अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता में जीवन–मूल्य

डॉ. अबूसाद अहमद

AB-54, मेडीकल कॉलोनी
ए.एम.यू. अलीगढ़–202002

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर कवि हैं। उनकी कविता में नए क्षेत्र के साथ नई दिशा का स्वरूप दिखाई देता है। उनके काव्य में एक ओर 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव' रोमानी भावबोध की कविताएँ हैं। वहीं दूसरी ओर 'गर्म हवाएँ', 'कुआनो नदी' , 'जंगल का दर्द', 'कोई मेरे साथ चले' में विद्रोह की भावना को देखा जा सकता है। कविता के ये दोनों रूप उनकी ज़िंदगी के जीये हुए क्षण का प्रतिफल हैं।

सक्सेना की कविता में लोक जीवन की त्रासदी को भी देखा जा सकता है। उनका गहन अनुभव सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। इनकी कविता में जीवन के अकथित सत्यों को देखा जा सकता है। इनके काव्य में व्यंग्य का चुभता तीखपन है जो हृदय के साथ–साथ हमारे विवेक को भी प्रभावित करता है। बुद्धितत्व उनकी कविता का प्राणतत्व है। इसी बुद्धितत्व को नई कविता में विशेष महत्व दिया गया। जो नई कविता के विकसित होने में सहायक सिद्ध हुई। जगदीश माथुर लिखते हैं कि ''जब समाज में शोषण और शक्ति का बोलबाला था, तब केवल काल्पनिक रसवादी कविताएँ करके अभिजात्य वर्ग को नहीं सहलाया जा सकता, अपितु व्यंग्य के सहारे बुद्धि पर तीखा प्रहार करना पड़ता है।''[1]

सर्वेश्वर अपने काव्य में मध्यवर्गीय जनजीवन की स्थिति, समस्या को गहराई से देखते हैं। उसे सूक्ष्मता से परखते हैं। उनका काव्य–चिंतन गतिशील है। जो स्वप्न से सत्य

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

के मार्ग पर चलता है। उनके काव्य लेखन में दायित्वपूर्ण कर्म मौजूद है। कुँवर नारायण कवि के विषय में अपना मत देते हुए कहते हैं कि ''सर्वेश्वर के काव्य में व्यक्ति की संवेदना सीमित न होकर सार्वभौमिक है। धरती के किसी कोने पर अन्याय होता दिखाई देता है तो कवि अपने अन्दर तक ताप अनुभव करता है। दरअसल सर्वेश्वर के लिए इंसान से बड़ा कुछ भी नहीं है न ईश्वर न प्रकृति सबका कद उनके यहाँ एक है।''[2]

कवि मध्यवर्गीय जन–जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। उनके काव्य में आक्रोश, संघर्ष, विरोध, आर्थिक वैषम्य, जनमुक्ति के स्वर मुख्य रूप से उभरकर सामने आते हैं। कवि इन मुसीबतों से निकलकर रास्ता बनाने वालों के पक्ष में खड़ा होता है। जो अपना जीवन प्रसन्नता के साथ व्यातीत करते हैं। उनके काव्य की यही क्षमता पाठक को प्रभावित करती है।

'काठ की घंटियाँ' इनका पहला कविता संग्रह है। इसमें एक ओर निराशा, वेदना एवं अवसाद के तत्व दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर सौंदर्यनुभूति भी है। जो व्यक्ति की बेचैनी, पीड़ा, व्यथा जैसे भावों को अभिव्यक्त करती है। कवि इन समस्त परिस्थितियों से जूझता हुआ आशा की किरण को जगाने का प्रयास करता है।

कवि 'मैंने आवाज़ दी' नामक कविता में घृणा एव तिरस्कार के अँधेरे को बुझा देता है। उसे विश्वास है कि समाज की खोखली व्यवस्था के शोर की आवाज़ उसके सत्य की आवाज़ को नहीं दबा सकती। कोई नफ़रत एवं घृणा का अंधकारमय कफ़न ओढ़कर प्रेम के प्रकाश को नहीं बुझा सकता है। कवि अकेला नहीं है उसके साथ आत्मविश्वास की रोशनी है–

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

''मैंने आवाज़ दी है कोई अभी आयेगा

दीप सिरहाने वही मेरे जला जायेगा।

'ओ अँधेरे का कफ़न ओढ़ के जाने वाले,

रोशनी देख ले यह गीत वही गायेगा।''[3]

कवि 'अँधेरे का मुसाफिर' नामक कविता में घोर अँधेरों के बीच साँप की भाँति टेड़े–मेढ़े रास्तों से पास होने वालों की लड़खड़ाहट को महसूस करता है उन्हें अपने स्पर्श से शक्ति प्रदान करता है। उसके साहस की यह रोशनी आत्मविश्वास को और बढ़ा देती है जो उसकी स्थिति को धूमिल नहीं होने देती। इसी बात का उल्लेख करते हुए कवि कहता है –

''यह अँधेरे की पिटारी, रास्ता यह साँप–सा,

खोलने वाला अनाड़ी मन रहा है काँप–सा।

लड़खड़ाने लग गया मैं, डगमगाने लग गया,

X X X

थाम ले कोई किरन की बाँह मुझको थाम ले,

नाम ले कोई कहीं से रोशनी का नाम ले।''[4]

कवि जीवन को गतिशील देखना चाहता है। वह खामोशी में आवाज़ सुनना चाहता है। ठहराव में जीवन कंपन का पक्षधर है। वह चाँदनी को पिघलाकर हवा में तेज़ी लाना चाहता है जिससे हवा तेज़ चले, पर्दा उठे और दरवाज़ा खुल जाए। जिससे उसके भीतर एक नई शक्ति का जन्म होता है। इसी शक्ति के बल पर वह समाज में सर उठाकर

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

जीवन व्यतीत कर सकता है। 'चाँदनी से कहो' नामक कविता में कवि इसी बिंदु की ओर इशारा करते हुए कहता है–

''चाँदनी से कहो
थोड़ा और पिघले,
हवा से कह दो
चलें कुछ और तेज़।
ताकि पर्दे हिलें,
दरवाजे खुलें
X X X
ताकि मैं, फिर सिर उठाकर गा सकूँ,
सींकचे झक–झोरकर चिल्ला सकूँ।''[5]

कवि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्तर पर व्यक्ति में असंतोष, आक्रोश, त्रास एवं घुटन को महसूस करता है। वह निम्नमध्यवर्गीय समाज में आर्थिक एवं राजनीतिक चक्की में दिन–रात पिसता रहता है। कवि व्यक्ति की इस अवस्था का यथार्थ चित्रण करते हुए कहता है –

''मैं कहना चाहता हूँ
यह कायरों का देश है
बौनों के समाज में
घुटनों के बल चलने की शिक्षा देते हैं
छोटी चार पाइपों के हिसाब से

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

आदमी के बढ़े हुए पैर काटकर

सोचते हैं उसे सुख और आराम दे रहे हैं।''[6]

कवि आधुनिक मानव जीवन की विवशता एवं दीनता का यथार्थ चित्रण करता है। उसे व्यक्ति समाज में अधूरा जीवन व्यतीत करना दिखाई देता है। क्योंकि व्यक्ति समाज में घृणा, प्रेम, क्रोध, क्षमा आदि आवेश को व्यक्त करने का कोई अधिकार नहीं रखता है। वह आधुनिक जीवन की विसंगतियों से परेशान है। कवि 'कैसी विचित्र है ज़िंदगी' नामक कविता में उपर्युक्त भावों का उल्लेख करता है –

''यह मूर्ति शक्ति की है

जिसके पैर ईश्वर से प्रार्थना करते समय

गिरकर टूट गये हैं।

यह करुणा की मूर्ति है

जिसकी आँखें स्वार्थ की भट्टी के सामने

खड़े रहने से जाती रही है।''[7]

सक्सेना नारी को पुरुष का सहचरी मानते हैं। पुरुष एवं नारी का रागात्मक संबंध जीवन को सुखी बनाता है। दोनों के बीच एक लय का निर्वाह करता है। प्रेम दो आत्माओं का मिलन होता है। इसलिए समाज में विवाह के बंधन को पवित्र माना गया है। 'मुझे स्वीकार नहीं' शीर्षक कविता में कवि इन्हीं बिंदुओं की ओर इशारा करता है –

''जिस ताप से लय हो जाए

सारा अस्तित्व एक दूसरे में

उससे बचकर

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

क्या करुँगा मैं

अपने तुम्हारे लिए

एक दुनिया रचकर।''[8]

कवि आने वाले समय में एक नई दिशा तलाश करता है। उसे शहर में भटके हुए लोग दिखाई नहीं देते। वह जगह–जगह पर स्वयं को नीलाम होता देख रहा है। धर्म–ईमान नाम की कोई चीज़ बची नहीं है। लोग एक–दूसरे को बाज़ार का मोल–भाव समझ रहे हैं। ऐसे लोग गंदे, आत्महीन, विकृत तथा खोखले हैं। कवि उनसे दूर रहने का अवह्यान करता दिखाई देता है –

''मैं जानता हूँ

क्या हुआ तुम्हारी लँगोटी का

उत्सवां में अधिकारियों के

बिल्ले बनाने के काम आ गयी,

और तुम्हारी लाठी?

उसी को टेक कर चल रही

एक बिगड़ी दिमाग डगमगाती सत्ता।''[9]

''व्यक्ति जब अनुभव से गुजरता है तब वह अनुभव के संसार को अनजाने ढंग से, अननुमय दिशा में प्रभावित कर देता है और लौटकर स्वयं भी बदल जाता है।''[10] कवि स्वयं को एक कवि मानने को तैयार नहीं है। वह अपने आपको एक काला झंडा समझ रहा है। कवि की यह सामाजिक चेतना प्रतीक के रूप में उभरकर आती है। वह स्वयं को देश तथा

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

समाज से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उसका यह मोहभंग 'धीरे–धीरे' कविता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है –

''मेरे दोस्तों
मैं उस देश का क्या करूँ
जो धीरे–धीरे खाली होता जा रहा है
मेरे दोस्तों
धीरे–धीरे कुछ नहीं होता
सिर्फ मौत होती है।
धीरे–धीरे एक क्रांति–यात्रा
शव–यात्रा में बदल रही है।''[11]

देश स्वतंत्र हुआ, परंतु विसंगति कम नहीं हुई। हमेशा से पूँजीपति लोग जन–आंदोलन की शक्ति को तोड़ते रहे हैं। समाज, शिक्षा, संस्कृति, राजनीति आदि क्षेत्रों में आर्थिक विपन्नता देखी जा सकती है। कवि इस भयावह परिवेश में आर्थिक तंत्र की गिरफ्त को अपने भीतर महसूस करता है। तभी एकाएक वह कह उठता है–

''झाँकियाँ निकलती हैं
ढ़ोंग की विश्वासघात की
बदबू आती है हर बार
एक मरी हुई बात की।''[12]

सक्सेना 'कुआनो नदी' नामक कविता में ग्राम्य–संवेदना की सशक्त एवं प्रभावशाली क्षमता का बोध कराते हैं। इस कविता में ग्रामीण जीवन का पिछड़ापन, गरीबी, लाचारी,

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

भुखमरी एवं पीड़ा के भाव को देखा जा सकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था दिन–प्रतिदिन नष्ट होती जा रही है। मनुष्य संघर्ष करता हुआ मृत्यु शैय्या पर पहुँच जाता है। परंतु उसकी आर्थिक स्थिति यथावत बनी रहती है। कवि इस विषय में स्पष्ट रूप से कहता है –

"बहुत गरीब जिला है वह बस्ती
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गए थे
ज़िंदगी से ऊबकर मर नहीं सके।"[13]

कवि समाज की भयावहता से निराश नहीं है बल्कि वह संघर्षरत है। वह मुक्ति की मशाल लेकर संघर्ष करता है। वह इन संबंधों को तोड़ना चाहता है। वह चारों ओर फैली ठंडक को गरमाहट में बदलना चाहता है –

"शब्द जिन्हें मैं बर्फ़ की सिल्लियों पर भी
अकेली चींटी सा चला ले जाता था
अब अंगारों से धधक रहे हैं
उनसे मैं खेल नहीं सकता
ये युद्ध–भूमि में बदल गए हैं।"[14]

कवि समाज में धरती से जुड़ा रहना चाहता है। इस पावन धरती की जड़ें उसके रग–रग में समाहित हैं। उसकी पीड़ा और दुख समाज को सुखी देखना चाहता है। कवि की पीड़ा आत्म चेतना से शुरू होती है और सामाजिक शिखर पर पहुँचकर ठहर जाती है।

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

वह समाज में एकता की भावना पर बल देता है। कवि को समाज का विभाजन बिल्कुल पसंद नहीं है –

''अँधेरे में संघर्षरत लहरें ही

नहीं चमकती

निराशा से लड़ता आदमी भी रोशनी देता है

मैं इस रोशनी की

परीक्षा करना चाहता हूँ।''[15]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का विराट व्यक्तित्व समाज की समस्याओं का साक्ष्य है। वह मानव रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष करता है। विरोधाभास, असंगति तथा विकृति का भाव साफ दिखाई देता है। जो व्यवस्था तंत्र तथा राजनीतिक तंत्र पर व्यंग्य है। उनके काव्य की व्यापकता सामाजिक चेतना को जन्म देती है। इनके काव्य में सामाजिक समस्याएँ विशेष रूप से उभरकर आती हैं जो उनके जीवन मूल्य को रेखांकित करती है। उनके काव्य में जीवन–मूल्य यथार्थ के धरातल पर खरा उतरता है।

संदर्भ :

1. गुप्त, जगदीश, नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्रथम संस्करण–1969, पृ. 120
2. दिनमान, 9–15 अक्टूबर, 1983, पृ. 13
3. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कविताएँ – एक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1978, पृ. 18–19
4. वही, पृ. 22
5. वही, पृ. 58
6. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, बाँस का पुल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1963, पृ. 53

Volume 8, Issue3, (July-Sep 2020)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed 'kks/k if=dk

7. वही, पृ. 63
8. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, एक सूनी नाव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1966, पृ. 26
9. वही, पृ. 109
10. अग्रवाल, विपिन कुमार, अमूर्तन के पक्ष में, पत्रिका, पृ. 25
11. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, एक सूनी नाव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1966, पृ. 89
12. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, गर्म हवाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1969, पृ. 89
13. वही, पृ. 93
14. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, जंगल का दर्द, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1984, पृ. 16–17
15. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, खूँटियों पर टँगे लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1984, पृ. 80